शोध मंथन ISSN: (P): 0976-5255 (e): 2454-339X Impact Factor 6.726 (SJIF)
Vol. X, No.IV, pp (1157-165) Oct.- Dec. 2019

वर्तमान समस्याओं के आलोक में ''तुलसीदास'' की प्रासंगिकता

डॉ0 जितेन्द्र कुमार परमार
असि0 प्रोफे0, हिन्दी विभाग,
महाराणा प्रताप राजकीय महाविद्यालय
सिकन्दराराऊ, (हाथरस)
Email: jkparmar16@gmail.com

सारांश

गोस्वामी तुलसीदास रचित साहित्य में मनुष्य जीवन की आन्तरिक व बाह्य सारी समस्याओं का समाधान भले न हो किन्तु तुलसी हमें ऐसा मार्ग व आदर्श अवश्य दिखाते हैं जिससे समरस समाज की स्थापना हो सकती है। वर्तमान उदारीकरण के युग में जब प्रतिस्पर्धा व स्वार्थ सिद्धि ने मानवीय सम्बन्धों की दीवार को रेतीली बनाकर दरका दिया है तब तुलसी विभिन्न पात्रों के जरिये समाज व राष्ट्र के समक्ष एक आदर्श प्रस्तुत करते हैं। मनुष्य का नैतिक पतन तभी रूक सकता है जब उसका आत्मिक उन्नयन हो और तुलसी यहाँ पर और अधिक प्रासंगिक हो उठते हैं। पाश्चात्य संस्कृति के अंधानुकरण की वजह से उत्पन्न यौन हिंसा, पारिवारिक विघटन, मानसिक क्लेश, अशांति, आदि समस्याओं का समाधान हम उनके साहित्य में पाते हैं। तुलसी की कट्टर मर्यादावादिता स्त्री के प्रति उनके विचारों में लक्षित होती है और यह उनके युग की सीमा है। उन्होंने शासन सत्ता के लिए उच्च आदर्श का उदाहरण प्रस्तुत किया कि श्री राम ने तत्कालीन समाज के सभी वर्गों, जातियों–प्रजातियों का समन्वय करते हुए उनको समान सम्मान प्रदान किया। सांप्रदायिकता की वर्तमान समस्या के समाधान में तुलसी की एक सीमित भूमिका ही है तो जातिगत वैमनस्य की समस्या के समाधान के लिए एक भिन्न दृष्टिकोण की आवश्यकता है। किन्तु वर्तमान समय की तमाम समस्याऐं जिसका एक पक्ष ''आर्थिक'' भी है, तुलसी की पैनी दृश्टि उस यथार्थ को भी हमारे समक्ष रखकर उन समस्याओं के समाधान का मार्ग उपलब्ध कराती है। वास्तव में समय की सापेक्षता में भले ही सामाजिक–सांस्कृतिक, राजनैतिक, आर्थिक, धार्मिक परिस्थितियों में परिवर्तन हो गया हो किन्तु तुलसी द्वारा प्रस्तुत आदर्श व उनके समन्वयवादी दृष्टिकोण के आधार पर वर्तमान समय की समस्याओं के समाधान का प्रयास किया जा सकता है। इस अर्थ में वे सच्चे लोकनायक हैं।

यदि हम वर्तमान परिदृश्य पर दृष्टि डालें और उसका विश्लेषण करें तो हम पाते हैं कि मनुष्य के जीवन की आन्तरिक व बाह्य तमाम समस्याओं का समाधान गोस्वामी तुलसीदास द्वारा रचित ''रामचरितमानस'' एवं अन्य साहित्य में उपलब्ध विचारों के आधार पर किया जा सकता है। ऐसा नहीं है कि जीवन की सभी समस्याओं का समाधान तुलसी साहित्य में

उपलब्ध है और न ही ऐसा है कि वैचारिक स्तर पर रामचरित मानस में कोई कमी न हो। फिर भी, जैसी कि कहावत है कि ''सार–सार को गहिलय, थोथा देय उड़ाय'', हम अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए ''मानस व अन्य साहित्य के वैचारिक सागर से कुछ दुर्लभ मोती निकाल सकते हैं, जिससे समाज व राष्ट्र को कुछ सकारात्मक दिशा प्राप्त हो सके। वैसे भी साहित्यकार का उद्देश्य समस्याओं के समाधान तलाशना नहीं, बल्कि अपनी पैनी दृष्टि से समस्याओं का साक्षात्कार लोगों से कराना है, एवं लोगों को दिशा दिखाना है। जैसा कि प्रेमचन्द्र अपने निबन्ध ''साहित्य का उद्देश्य'' में लिखते हैं कि – ''साहित्यकार का लक्ष्य केवल महफिल सजाना और मनोरंजन का सामान जुटाना नहीं है– उसका दरजा इतना न गिराइये। वह देश भक्ति और राजनीति के पीछे चलने वाली सच्चाई भी नहीं बल्कि उनके आगे मशाल दिखाती हुई चलने वाली सच्चाई है।''(1)

वर्तमान वैश्वीकरण एवं उदारीकरण के इस दौर में जबकि गलाकाट प्रतिस्पर्धा लोगों के जीवन एवं आचरण का अभिन्न हिस्सा होती जा रही है, सम्बन्धों की अहमियत केवल स्वयं के हित एवं प्रगति के लक्ष्य को साधने के साधन के रूप तक ही सीमित रह गई है। लोगों के हृदय क्षुद्र एवं संकीर्ण होते जा रहे हैं, संवेदनशीलता समाप्त होती जा रही है। चारों ओर मर्यादाओं को तार–तार किया जा रहा है। स्वार्थ सिद्धि एवं हृदय की क्षुद्रता सम्बन्धों को नियमित कर रही है। भाई–भाई का दुश्मन हो रहा है, मित्रता स्वार्थ तक सीमित रह गई है, वैवाहिक सम्बन्ध अब सात जन्मों का रिश्ता नहीं वरन् समझौतों में परिणत होते जा रहे हैं, सेवा भाव लोगों में दिनों दिन कम होता जा रहा है। दया–करूणा, परोपकार आदि भावनाओं का समाज के एक सीमित वर्ग द्वारा ही अपने व्यवहार का अंग बनाया जा रहा है। मनुष्य का नैतिक पतन होता जा रहा है। इस परिदृश्य में सबसे बडी चुनौती मानवता के ह्रास को रोकने की है। और यहीं पर तुलसी हमारे लिए सर्वाधिक प्रासंगिक नजर आते हैं। जिन्होनें श्रीराम के मानवीय पक्ष को उजागर करके उन्हें मर्यादा पुरूषोत्तम श्रीराम करार दिया है। और लोगों के लिए एक आदर्श प्रस्तुत किया है। पुरूषोत्तम का तात्पर्य ही है कि वे एक ओर ईश्वर भी हैं तो दूसरी ओर सामान्य मनुष्य भी हैं। सामान्य मनुष्य की तरह ही उनके सुख दुःख हैं, उनकी भावनाएं हैं। समाज के पिछड़े, दलित वर्ग के प्रति उनकी मानवता, उदारता सर्वत्र लक्षित होती है। उसमें कहीं भी संकीर्णता नहीं है। और न केवल श्री राम बल्कि 'मानस' के अन्य विभिन्न पात्रों के जरिये भी तुलसी समाज के लिए एक आदर्श प्रस्तुत करते हैं। वास्तव में मानव प्रकृति से सम्बन्धित जितनी समस्याएं हैं, उनका समाधान ''मानस'' हमें उपलब्ध कराती है। शुक्ल जी एक स्थान पर लिखते है – ''मानव प्रकृति के जितने अधिक रूपों के साथ गोस्वामी जी के हृदय का रागात्मक सामंजस्य हम देखते हैं, इतना अधिक हिन्दी भाषा के और किसी कवि के हृदय का नहीं। ''(2)

वास्तव में मानवीय सम्बन्धों के बिना लोक–व्यवहार की कल्पना ही नहीं की जा सकती है। मनुष्य, मनुष्य का ऐसा कोई सम्बन्ध नहीं जिसका आदर्श तुलसी ने स्थापित न किया हो । मानस में माता–पिता, पिता–पुत्र, भाई–भाई, माता–पुत्र, गुरू–शिष्य, स्वामी–सेवक, पति–पत्नी, मित्रता आदि विभिन्न आदर्श सम्बन्धों का चित्रण किया गया है। विभिन्न सामाजिक संस्थाओं के

संगठन का आधार भी ये सम्बन्ध ही हैं। और इन्हीं सम्बन्धों के आधार पर ही सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक मूल्यों की स्थापना होती है। यदि इन मूल्यों की महानता को सुनिश्चित किया जा सके, तो मनुष्य की आसुरी वृत्तियों को नियन्त्रित किया जा सकता है। इसके लिए मूल्यपरक शिक्षा का प्रसार करना होगा। इस आधार पर ''मानस'' में प्रतिपादित मूल्यों की आदर्श लोक व्यवस्था की स्थापना में महत्वपूर्ण भूमिका है।

वर्तमान समय का नैतिक पतन समाज में व्यभिचार को बढ़ावा दे रहा है। वास्तव में प्रत्येक व्यक्ति के अन्दर राम एवं रावण रूपी सद्‌गुणों व दुर्गुणों का पाया जाना एक यथार्थ है किन्तु इनकी मात्रा व अनुपात का अन्तर ही व्यक्ति को अच्छा व बुरा बना देता है। ''मानस'' के राम अच्छाई के केवल प्रतीक नहीं है बल्कि वे प्रेरणा पुरूष हैं, एक आदर्श हैं जिसकी तरफ बढ़ने की प्रेरणा व संदेश मानव के समक्ष रखते हैं। यदि व्यक्ति के अन्दर की अच्छाइयों को उभार दिया जाए तो उसे आपराधिक कृत्यों को करने से रोका जा सकता है। गांधीजी भी कहते हैं कि ''मनुश्य अच्छाइयों का पुंज ही है किन्तु उसकी आत्मा पर दया, काम, क्रोध, लोभ, ईर्ष्या आदि प्रवृत्तियों का पर्दा पड़ जाता है जिसके कारण वह असत्य के मार्ग पर चलकर कुकृत्य करने कां विवश हो जाता है।''

वास्तव में ''मानस'' का लक्ष्य ही है – आत्म पक्ष और लोक पक्ष दोनों का सम्बन्ध। आचार्य शुक्ल लिखते है कि हमें अपनी अंतर्वृत्ति भी शुद्ध और सात्विक रखनी चाहिए और अपने सम्बन्ध में लोक की धारणा भी अच्छी बनानी चाहिए। जिसका प्रभाव लोक पर न पड़े, उसे हम मनुष्यत्व का पूर्ण विकास नहीं कह सकते हैं। यदि हम वस्तुतः सात्विकशील है पर लोग भ्रमवश या किसी और कारणवश हमें बुरा समझ रहे हैं, तो हमारी सात्विकशीलता समाज के किसी उपयोग की नहीं। हम अपनी सात्विकशीलता अपने साथ लिये चाहे स्वर्ग का सुख भोगने चले जाएं, पर अपने पीछे दस–पाँच आदमियों के बीच दस–पाँच दिन के लिए भी कोई शुभ प्रभाव न छोड़ जाएगें। ऐसे ऐकांतिक जीवन का चित्रण जिसमें प्रभविष्णुता ना हो रामायण का लक्ष्य नही हैं। रामायण, भरत ऐसे पुण्यश्लोक को सामने करता है जिनके सम्बन्ध में राम कहते हैं–

मिटिहहिं पाप प्रपंच सब, अखिल अमंगल भार।
लोक सुजस, परलोक सुख, सुमिरत नाम तुम्हार।।'' (3)

वर्तमान समय में पाश्चात्य संस्कृति के अंधानुकरण की वजह से भी तमाम समस्याएं उत्पन्न हो रही हैं जैसे कि – यौन हिंसा, पारिवारिक विघटन, मानसिक क्लेश, अशांति, शारीरिक अस्वस्थता आदि। ऐसे में तुलसी हमारे लिए और अधिक प्रासंगिक हो जाते हैं। उनके अवदान की वजह से यदि हम आज की पीड़ी को भारतीय संस्कृति से जुड़ाव महसूस करा सकें तो हम नैतिक मूल्यों के प्रसार द्वारा विभिन्न समस्याओं का समाधान खोज सकते हैं। वास्तव में आज सम्पूर्ण विश्व जिस विकास की चर्चा कर रहा है वहाँ केवल भौतिक उन्नति की ही चर्चा है एवं आध्यात्मिक विकास उसमें कहीं पीछे छूट गया है। डा0 राधाकृष्णन ''सत्य की खोज'' में लिखते हैं – केवल आर्थिक या भौतिक उन्नति ही काफी नहीं है, आध्यात्मिक उन्नति भी आवश्यक है

क्योंकि मनुष्य केवल शरीर या मन ही नहीं है, कुछ और भी है। वह आत्मा भी है। वर्तमान सभ्यता में अध्यात्म का जो अभाव है वही उसकी वर्तमान कठिनाइयों का कारण भी है।

यदि व्यक्ति का आत्मिक उत्कर्ष हो जाए तो यह सुनिश्चित है कि मानवता का दिग्दिगंत तक प्रसार हो जाएगा और अमानवीयता–जनित समस्याओं का समाधान भी हो जायेगा। इस प्रकार आधुनिक जीवन का संत्रास, कुंठा, निराशा को दूर करने में ''मानस'' के मूल्यों की महत्वपूर्ण भूमिका हो सकती है। और इस प्रकार व्यक्ति के विघटन को रोका जा सकता है।

पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाववश वर्तमान समय में एक और समस्या विस्तार ले रही है वह है– विवाह विच्छेद की समस्या। वास्तव में पारिवारिक विघटन का कारण आधुनिक जीवन शैली तो है ही, परस्पर त्याग की भावना का अभाव भी है। ''मानस'' में सीता, उर्मिला चरित्रों के माध्यम से हम आदर्श नारी व आदर्श पत्नी की भूमिका से रूबरू होते हैं। एक प्रसंग–चित्रकूट में जब भरत, जनक आदि राम को वापस लाने के लिए एकत्रित होते हैं, तब उस रात सीता का अपने पिता के शिविर में रूकने का संकोच दिखाते हुए तुलसी लिखते हैं–

कहत न सीय सकुचि मन माहीं। इहाँ बसब रजनी भल नाहीं।।

अर्थात सीता को यह उचित नहीं लगता कि पति तपस्वी के भेष में भूशय्या पर रात काटे और पत्नी उनसे अलग राजसी ठाट–बाट के बीच रहे, यही असमंजस का कारण है।

ऐसे में दूसरी तरफ विवाहित पुत्री को पति की अनुगामिनी देख जनक का हर्षित होना स्वाभाविक है –

''पुत्रि! पवित्र किए कुल दोऊ ''

दाम्पत्य प्रेम के इन दृश्यों पर शुक्ल जी लिखते हैं –''

''दाम्पत्य प्रेम का दृश्य भी गोस्वामी जी ने बहुत ही सुन्दर दिखाया है, पर बड़ी मर्यादा के साथ। नायिका भेद वाले कवियों का सा या कृष्ण की रासलीला के रसिकों का सा लोक मर्यादा का उल्लंघन उसमें कहीं नहीं है। सीता–राम के परम पुनीत प्रणय की जो प्रतिष्ठा उन्होंने मिथिला में की, उसकी परिपक्वता जीवन की भिन्न–भिन्न दशाओं के बीच पति–पत्नी के सम्बन्ध की उच्चता और रमणीयता संघटित करती दिखाई देती है''।

वास्तव में तुलसी कट्टर मर्यादावादी थे। अतः नारी के प्रति उनके विचार परम्परागत प्रतिमानों पर ही आधारित थे। अतः कह सकते हैं कि स्त्रियों को लेकर उनके विचार उस युग की सीमा है। वर्तमान दौर में जबकि महिलाएं पुरूषों के कंधे से कंधा मिलाकर राष्ट्र विकास से सम्बन्धित विभिन्न क्षेत्रों में अपना सकारात्मक योगदान दे रही हैं तब हम ''जिमि स्वतन्त्र होई बिगरहिं नारी'' कहकर इस पंक्ति का एकाकी अर्थ नहीं ले सकते। और राष्ट्र निर्माण के कार्यो में सक्रिय योगदान से वंचित नहीं कर सकते। फिर भी इतना तो कहा ही जा सकता है कि राम–सीता या लक्ष्मण–उर्मिला के प्रसंग दाम्पत्य जीवन में परस्पर प्रेम, त्याग व समर्पण का विलक्षण व अनुपम उदाहरण प्रस्तुत करते हैं जो कि वर्तमान समाज के लिए एक आदर्श तो है ही।

राम–राज्य के रूप में आदर्श राज्य की परिकल्पना तुलसी की ऐसी परिकल्पना है जो पूर्णतः यथार्थवादी न सही किन्तु यूटोपिया भी नहीं है। वर्तमान लोकतान्त्रिक शासन–व्यवस्था के लिए इसमें ऐसे आदर्श हैं जो न केवल शासकों–प्रशासकों, बल्कि आम जनमानस, नागरिकों के लिए पथ–प्रदर्शन का काम करते हैं। और फिर, आदर्श होते ही इसलिए हैं कि उनकी ओर अग्रसर होकर व्यवहार की उच्चतर स्थिति को प्राप्त किया जा सके। ''जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी। सो नृप अवस नरक अधिकारी'' की उक्ति न केवल तत्कालीन राजतंत्रात्मक शासन पद्धति के लिए बल्कि वर्तमान लोकतंत्रात्मक शासन व्यवस्था के लिए भी आदर्श प्रस्तुत करती है। आचार्य शुक्ल एक स्थान पर लिखते है कि ''तुलसी मर्यादित लोकवाद के समर्थक प्रतीत होते हैं पर उनका लोकवाद वह लोकवाद नहीं है जिसका अकांड तांडव रूस में हो रहा है। वे व्यक्ति की स्वतंत्रता का हरण नहीं चाहते जिसमे व्यक्ति इच्छानुसार हाथ–पैर भी नहीं हिला सके, अपने श्रम, शक्ति और गुण का अपने लिए कोई फल ही न देख सके। वे व्यक्ति के आचरण का इतना ही प्रतिबन्ध चाहते हैं जितने से दूसरों के जीवन मार्ग में बाधा न पड़े और हृदय की उदार वृत्तियों के साथ लौकिक सम्बन्धों का सामंजस्य बना रहे। राजा–प्रजा, उच्च–नीच, धनी दरिद्र, सबल निर्बल, शास्य शासक, मूर्ख पंडित, पति पत्नी, गुरू शिष्य, पिता पुत्र इत्यादि भेदों के कारण जो अनेक रूपात्मक सम्बन्ध प्रतिष्ठित हैं उनके निर्वाह के अनुकूल मन (भाव) वचन और कर्म की व्यवस्था ही उनका लक्ष्य है, क्योंकि इन सम्बन्धों की उपेक्षा करने वाले व्यक्ति प्राधान्यवाद के वे अवश्य विरोधी हैं। ''(4)

राजा के लिए आदर्श का इससे अच्छा उदाहरण क्या हो सकता है कि श्रीराम ने तत्कालीन समाज के सभी वर्गो, जातियों–प्रजातियों का समन्वय करते हुए उनको समान सम्मान प्रदान किया। समता की इस चेतना ने सामाजिक असमानता को दूर करने का सार्थक कार्य किया। श्रीराम द्वारा अहिल्या को शिला से देवी बनाना, निशादराज गुह को गले लगाना, शबरी के आश्रम में जाकर उसके जूठे बेर खाना, वानर संस्कृति के नायक सुग्रीव को स्वीकारना, विधर्मी विभीषण को अपनाना, रीछ प्रजाति के जामवंत को अपनाना आदि प्रकरण इस बात के ही साक्षी हैं।

वर्तमान समय में जबकि सत्ता लोलुपता अपने चरम पर है और राजनेताओं द्वारा साम, दाम, दंड, भेद आदि सारे उपायों के माध्यम से किसी भी स्तर तक जाकर सत्ता प्राप्ति का उद्देश्य पूरा किया जा रहा हो, ऐसे में तुलसी यहां भी एक आदर्श राजा के लिए प्रस्तुत करते हैं –

'' मुखिया मुख सो चाहिए, खान पान कहु एक''
पालय पोसय सकल अंग, तुलसी सहित विवेक।''

अर्थात राजा शरीर के मुख की भाँति होता है। जैसे हम भोजन मुख से ग्रहण करते हैं किन्तु उसके द्वारा पूरे शरीर और इन्द्रियों का पोषण होता है। मुँह में कुछ नहीं रहता। उसी प्रकार राम राजा होते हुए भी पूर्ण त्यागी और प्रजा का सम्यक पालन पोषण करने वाले हैं। उपरोक्त पक्तियां वास्तव में वर्तमान समय के भ्रष्ट राजनेताओं पर एक करारा तमाचा तो है ही, साथ ही मार्गदर्शक सिद्धांत भी है।

''सांप्रदायिकता'' भी वर्तमान समय की एक गंभीर समस्या है। इसका मूल कारण स्वयं के धर्म व धार्मिक मूल्यों को उच्चतर एवं दूसरे के धर्म व धार्मिक मूल्यों को हीनतर मानना है। जब धर्म के आन्तरिक स्वरूप को भूलकर केवल धार्मिक कर्मकांडों को ही धर्म या सब कुछ मान लिया जाता है, तभी धार्मिक वैमनस्य की शुरूआत होती है जो कि कालान्तर मे सांप्रदायिकता की गम्भीर समस्या में परिणत हो जाती है। देखा जाए तो इस समस्या के समाधान में तुलसीदास की बहुत ही सीमित भूमिका है। इसका कारण यह है कि यह समस्या भिन्न–भिन्न धार्मिक मतावलम्बियों के मध्य की समस्या है और ''मानस'' का प्रभाव केवल हिंदू धर्म के मतावलम्बियों तक ही सीमित रहेगा। तो केवल एक पक्ष के आत्मिक उन्नयन से भी बात बनने वाली नहीं। एक पक्ष की धार्मिक कट्टरपंथी सोच दूसरे पक्ष में भी प्रतिक्रियात्मक कट्टरपंथी विचारों का प्रसार करेगी। फिर भी, हम यह भी नहीं कह सकते कि इस सन्दर्भ में ''मानस'' की कोई भूमिका ही नहीं है। वास्तव में, आत्मिक उन्नयन के द्वारा जब दया, करूणा, प्रेम, उदारता आदि सद्गुणों का प्रसार होगा तो इसका प्रभाव समस्त मानवता पर पड़ना स्वाभाविक है और इस प्रकार प्रकारान्तर से सर्वधर्म समभाव की रूपरेखा ही निर्मित होगी। और वैसे भी, ''मानस'' की समन्वयात्मक प्रवृत्ति का प्रभाव मन–मस्तिष्क पर पड़ना स्वाभाविक है। उपरोक्त समस्या के समाधान में तुलसी की निम्न पंक्तियों की महत्वपूर्ण भूमिका हो सकती है –

''तुलसी इस संसार में भांति–भांति के लोग
सबसे हंस मिल बोलिए, नदी नाव संजोग।''

जहाँ तक जातिगत वैमनस्य की समस्या की बात है, तो इसे समझने के लिए हमें एक भिन्न प्रकार के चश्मे की आवश्यकता है। क्योंकि तुलसीकालीन समाज और वर्तमान आधुनिक समाज की स्थिति में अत्यधिक अन्तर है। जहाँ तक तुलसी की बात है तो वे कट्टर मर्यादावादी थे और प्राचीन वर्णाश्रम व्यवस्था को ही सामाजिक व्यवस्था का निर्धारक तत्व मानते थे। शुक्ल जी ने उस समय की सामाजिक व्यवस्था को बड़े ही खूबसूरती से विश्लेषित किया है – जिस वर्णाश्रम धर्म का पालन प्रजा करती थी, उसमें ऊँची–नीची श्रेणियां थीं, उसमें कुछ काम छोटे माने जाते थे, कुछ बड़े। फावडा लेकर मिट्टी खोदने वाले और कलम लेकर वेदांत सूत्र लिखने वाले के काम एक ही कोटि के नहीं माने जाते थे। ऐसे दो काम अब भी एक दृष्टि से नही देखे जाते। लोक दृष्टि उसमें भेद कर ही लेती है। इस भेद को किसी प्रकार की चिकनी–चुपड़ी भाषा या पाखंड नहीं मिटा सकता–

बरनाश्रम निज–निज धरम, निरत बेद पथ लोग।
चलहिं सदा पावहिं सुखहिं, नहिं भय सोक न रोग।

छोटे समझे जाने वाले काम करने वाले बड़े काम करने वालों को ईर्ष्या और द्वेष की दृष्टि से क्यों नहीं देखते थे ? वे यह क्यों नहीं कहते थे कि हम क्यों फावड़ा चलावें, क्यों दुकान पर बैठें ? समाज को अव्यवस्थित करने वाले इस भाव को रोकने वाली पहली बात तो थी, समाज के प्रति कर्तव्य के भार का नीची श्रेणियों में जाकर क्रमशः कम होना। ब्राह्मणों और क्षत्रियों को लोकहित के लिए अपने व्यक्तिगत सुख का हर घड़ी त्याग करने के लिए तैयार रहना पड़ता था।

ब्राह्मणों को तो सदा अपने व्यक्तिगत सांसारिक सुख की मात्रा कम रखनी पड़ती थी। क्षत्रियों को अवसर विशेष पर अपना सर्वस्व–अपने प्राण तक–छोड़ने के लिए उद्यत होना पड़ता था। शेष वर्गों को अपने व्यक्तिगत या पारिवारिक सुख की व्यवस्था के लिए सब अवस्थाओं में पूरा अवकाश रहता था। अतः उच्च वर्ग में अधिक मान या अधिक अधिकार के साथ कठिन कर्तव्यों की योजना और निम्न वर्गों में कम मान और कम सुख के साथ अधिक अवस्थाओं में आराम की योजना जीवन निर्वाह की दृष्टि से सामंजस्य रखती थी। .....जब तक उच्च श्रेणियों में कर्तव्य की कठिनता प्रत्यक्ष रहेगी– कठिनता के साक्षात्कार के अवसर आते रहेंगे– तब तक नीची श्रेणियों में ईर्ष्या द्वेष का भाव नहीं जाग्रत हो सकता। .....जब कर्तव्य भाग शिथिल पड़ेगा और अधिकार भाग ज्यों का त्यों रहेगा, तब स्थिति विघातिनी विषमता उत्पन्न होगी। इसी कारण तुलसी लिखते हैं –

''नहिं दरिद्र कोउ दुखी न दीना।
नहिं कोउ अबुध न लच्छन हीना।।'' (5)

वर्तमान परिदृश्य को देखें तो आजकल कार्यस्थलों पर कर्म आधारित वर्णव्यवस्था ही है। प्रत्येक जाति का व्यक्ति अपनी योग्यता, क्षमता के बल पर किसी भी पद पर प्रतिष्ठित हो सकता है या किसी भी प्रकार का व्यापार कर सकता है। किन्तु विवाह आदि मामलों में जाति आधारित व्यवस्था ही व्यवहार में लक्षित होती है, फिर भी प्रेम विवाह के माध्यम से जातीय ढाँचा टूट रहा है। इसके अतिरिक्त ''आर्थिक स्थिति'' के आधार पर वर्ग, समूह बन रहे हैं इससे जातिआधारित भेदभाव की समस्या दूर हो रही है। फिर, आधुनिक जीवन शैली, साथ–साथ यात्राएं करना, वैवाहिक कार्यक्रमों आदि में साथ–साथ भोजन करना, कार्यस्थलों पर साथ–साथ संगठित होकर कार्य करना आदि व्यापार–व्यवहार ने जातिगत–वैमनस्यता को दूर करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। वास्तव में, वर्तमान समय की कुटिल राजनीति ही जातिगत वैमनस्यता की समस्या को बनाए रखने का प्रयास कर रही है वरना मनुष्य की आधुनिक जीवन शैली इस समस्या को जड़मूल से उखाड़ फेंकेगी।

वर्तमान समय की तमाम ऐसी समस्याएं हैं जिनका मूल कारण आर्थिक अभाव ही है। जैसे कि नक्सलवाद, आतंकवाद, चोरी, डकैती आदि समस्याओं का एक पक्ष आर्थिक अभाव से भी जुड़ता है। तुलसी की पैनी दृष्टि अपने युग के आर्थिक पक्ष से सम्बन्धित समस्याओं से बच नहीं सकती थी। ''रमेश कुंतल मेघ'' तुलसी की आर्थिक दृष्टि को विश्लेषित करते हुए लिखते हैं – '' जब वे समाज के पूरे रंगमंच को देखते–देखते तथा भोगते–भोगते यथार्थवादी एवं व्यावहारिक भी हो जाते हैं (दोहावली, कवितावली, हनुमान बाहुक आदि) तब वे कलिकाल की गर्दन मरोड़ देते हैं। अपने जीवन के परवर्ती चरण में तुलसी आध्यात्मिक और स्वप्नदृष्टा के बजाय धार्मिक और यथार्थदृष्टा हुए हैं। उन्होंने अंततः घोषित ही किया कि सारे समाज तंत्र का आधार ''पेट'' अर्थात''आर्थिक शक्ति'' है (कवितावली)। यह उनके समाजदर्शन की महत्तम सिद्धि है जो उन्हें कबीर तक से बहुत आगे ले जा सकती है। आर्थिक दरिद्रता को इतना भोगने समझने वाला मनुष्य, दरिद्रता के सामाजिक परिणामों को इतना सटीक विश्लेषित करने वाला समाज

पुरूष और दरिद्रता से इतनी प्रगाढ़ नफरत करने वाला लोककवि ''तुलसी'' के अलावा कोई नहीं है। ''(6)

कवि तुलसी ''कवितावली'' के उत्तरकांड में सामाजिक एवं सांस्कृतिक संकट के यथार्थ को ही हमारे समक्ष नही रखता, आम जनमानस के आर्थिक संकट और भूख, पीड़ा के यथार्थ को भी बताता है। डॉ0 योगेन्द्र प्रताप सिंह लिखते हैं कि तुलसी समाज की जिस दरिद्रता, अधःपतन, सांस्कृतिक पराभव, नैतिक भ्रष्टता, धार्मिक विकृति का परिचय कवितावली में देते हैं, वह उनके युग का यथार्थवाद है। ''यहाँ वे समग्र दुखी एवं आर्त्तजनों को एकत्रित करके उन्हें संकट से मुक्त करने का उपाय बताते हैं। यथार्थ के स्तर पर पेट की भूख से व्याकुल आजीविका में लगे कामगर, किसान, बनिया, भिखारी, भांट, दास, नट, चोर, पुरोहित, चारण, पर्वतारोही, वनचर, कोल, किरात और ऐसे असहाय जो पुत्र एवं पुत्रियों का विक्रय करके अपना पेट पालते हैं। कवि के युग की कमोवेश यही आजीविका के स्त्रोत हैं – ध्यान देने लायक है कि ये आय के स्त्रोत सामान्यजनों के हैं। कवि आजीविका सम्बद्ध इस वर्ग की युगीन दुर्दशा का चित्र अंकित करता है –''(7)

''खेती न किसान को भिखारी को न भीख बलि
बनिक को बनिज न चाकर को चाकरी।
जीविका विहीन लोक सीद्यमान सोच बस
कहैं एक एकन सो कहां जाई का करी।।
बेद हू पुरान कहीं लोकहू बिलोकियत
सांकरे सबै पै राम रावरे कृपा करी।
दारिद दसानन दबाई दुनी दीनबंधु
दुरित दहन देखि तुलसी हहा करी। ''(8)

''सर्वहारा वर्ग के ठीक प्रतिकूल यह बेसहारा वर्ग, असहाय, निराश्रित, आलम्बन विहीन कहां जाये और क्या करे। यह बेसहारा वर्ग निराश्रित है। तुलसी इस निराश्रित वर्ग के साथ हैं''(9)। संसार को दरिद्रता रूपी रावण ने ढक रखा है। ''कहाँ जाई का करी'' पद के द्वारा उस युग की निरीहता का यथार्थपरक चित्र कवि प्रस्तुत करता है।

वास्तव में कलिकाल के बहाने से तुलसी ने ''कवितावली'' और ''विनयपत्रिका'' में समाज में व्याप्त शोषण, भूख, बेकारी, अकाल, लोभ, लिप्सा, ईर्ष्या–द्वेष, सामाजिक अराजकता, सांस्कृतिक प्रदूषण, सामंती वर्ग के शोषण व कट्टरपंथी धर्मावलम्बियों के वर्णन के साथ–साथ अंतर्मन व तन की पीड़ा का उल्लेख भी किया है। ''मैनेजर पांडेय'' ने तुलसी के उत्तरकालीन साहित्य को तुलसी के काव्य का दूसरा पक्ष कहा है– '' जिसके आगे–पीछे कोई शास्त्र नहीं है। वहाँ लोकजीवन का व्यापक अनुभव है, उनका अपना चिंतन है और गहरी सहृदयता है। यह सब रामचरितमानस में भी है, विशेषतः उसके मानवीय सम्बन्धों के चित्रण, कथा के रचना विधान और काव्य भाषा की बनावट में। परन्तु उनकी गम्भीर चिन्तनशीलता और सहृदयता के एक से बढ़कर एक उदाहरण विनयपत्रिका में मिलते हैं .....कवितावली के आत्मकथात्मक छंदो में अपने

जीवन और समाज के कठोर सच को सीधे कहने की तत्परता है तो दूसरे अनेक छंदो में उस समय के समाज के यथार्थ का मर्मस्पर्शी चित्रण भी है। उन्होनें समाज में फैली गरीबी, भुखमरी, अकाल और महामारी के त्रासद यथार्थ का जो वर्णन किया है, उसमें उनकी जनजीवन से गहरी आत्मीयता और व्यापक करूणा व्यक्त हुई है। तुलसीदास के काव्य का यह पक्ष शास्त्र से मुक्त एवं लोक अनुभव से प्रेरित है।''(10)

अर्थजनित उपरोक्त समस्याएं वर्तमान समय में भी विकराल रूप धारण किये हुए हैं अतः शासन सत्ता को इन समस्याओं की ओर ध्यान आकृष्ट करके एवं समस्याओं के निदान का कर्तव्य निभाकर शांत एवं समरस समाज की स्थापना करनी होगी। यदि तमाम प्रयासों को करने के पश्चात् भी मनुष्य स्वयं की पीड़ित, दमित स्थिति से उबरने में असफल रहता है तो उस स्थिति में तुलसी की ''राम–नाम की भक्ति'' दुखी और टूटे मनों के लिए वो संबल है जो परिस्थितियों का लड़कर सामना करने का साहस प्रदान करता है।

इस प्रकार हम उपरोक्त विश्लेषण के आधार पर कह सकते हैं कि समय की सापेक्षता में भले ही सामाजिक–सांस्कृतिक, राजनैतिक, आर्थिक, धार्मिक परिस्थितियों में परिवर्तन हो गया हो किन्तु तुलसी द्वारा प्रस्तुत आदर्श, उनका मानवतावादी व समन्वयवादी दृष्टिकोण, लोक मर्यादा, वसुधैव कुटुम्बकम की भावना, असुरत्व पर मानवत्व की विजय आदि वो बिन्दु हैं जिनके आधार पर वर्तमान समय की समस्याओं के समाधान का प्रयास किया जा सकता है। इस आधार पर वे सच्चे लोक नायक कहे जायेंगे और जब तक एक न्यायपूर्ण समरस समाज की स्थापना की आवश्यकता रहेगी तब तक तुलसी प्रांसगिक बने रहेंगे।

सन्दर्भ ग्रंथ

1. पृष्ठ **124,** *निबन्ध संकलन*–संपादक डा0 सत्येन्द्र,वाणी प्रकाशन,नई दिल्ली,संस्करण 2000
2. पृष्ठ **79**, गोस्वामी तुलसीदास–रामचन्द्र शुक्ल (2015), वाणी प्रकाशन नई दिल्ली
3. पृष्ठ **108,** वही
4. पृष्ठ **48** वही
5. पृष्ठ **44** वही
6. पृष्ठ **116** मेघ, रमेश कुंतल (1967) –*'तुलसी : आधुनिक वातायन से''* ,नई दिल्ली भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन
7. पृष्ठ **33**, *कवितावली*–संपादक योगेन्द्र प्रताप सिंह (2002), जयभारती प्रकाशन इलाहाबाद
8. पद **97**, *कवितावली* उत्तरकांड
9. पृष्ठ **34** कवितावली–योगेन्द्र प्रताप सिंह
10. पृष्ठ **18** पांडेय, मैनेजर (2011)–*''भक्ति,काव्य और हिन्दी आलोचना''*,संकलित निबन्ध संपादक मधुरेश,नई दिल्ली नेशनल बुक ट्रस्ट